गुन ना हिरानो गुन गाहक हिरानो है। इस भावना के साथ मित्रो! मेरी इस रचना के तुकान्त न देखते हुए इसके लय विधान को देखें यह आठ सोलह व बत्तीस मात्राओं के अनुशासन में मत्त सवैया के प्रवाह में छन्दबद्ध किन्तु एक अतुकान्त रचना है। केवल एक बार पढ़ जाएँ। कविता ऐसे भी होती है। आनन्द लें व आशीष दें।

समझो द्वारे पर है बसन्त

गिरेंद्र सिंह "भदौरिया"

मद्धिम कुहरे की छटा चीर पूरब से आते रश्मिरथी उनके स्वागत में भर उड़ान आकाश भेदते कलरव से खग वंश बेलि के उच्चारण जब अर्थ बदलने लगें और बहुरंग तितलियाँ चटक-मटक आ फूल-फूल पर मँडराएँ जब मौन तोड़ कोयलें गीत अमराई में गा उठें और मधुकर के गुंजित राग उठें पड़कुलिया गमकाए ढोलक जब झाँझ बजाएँ मैनाएंँ बज उठें मँजीरों सी फसलें लग उठे तबलची सा बैठा कर उठे गुटुर गूँ हर कपोत मोरनी मोर का नाच देख इतराने लगे बगीचे में महुआ मदमाता हुआ कहे टेसू का लाल सुर्ख चेहरा पी रहा धरा की हरियाली सर्वथा नवीना कली-कली सुषमा बिखेरती हो कदली पियराई सरसों फूल बिछा खेतों में अँगडाई लेती विटपों से लिपटीं लतिकाएँ आलिंगन करतीं लगतीं हों, चुम्बन पर चुम्बन जड़तीं हों। समझो द्वारे पर है बसन्त।।

जब सघन वनों के बीच-बीच गायों के गोबर से लीपे आश्रम के आँगन-आँगन में घी सनी बनी हवि समिधा से हो उठे हवन में सन्तों की आहुतियों से उठ रहा धुआँ जब मन्द-मन्द ले उड़े पवन बिखराता जाए दिग्दिगन्त उल्लासभरी तरुणाई पर छा उठे जोश नव यौवन का खुशबू बिखेरती मलिकाएँ मुस्कातीं आतीं लगतीं हों, जब रंग-बिरंगे फूलों की मदमाती झूमा-झटकी में मचलीं हों कलियाँ खिलने को खिलखिला उठे सौन्दर्य स्वयं हो उठे मनोहारी पीपल हर दृष्टि सुहानी सृष्टि देख जागे विवेक हर लेख लेख कर उठे समीक्षा सौरभ की धरती माता के गौरव की पतझड़ से उजड़े वन-वन में समिधाएँ आने लगतीं हों शुचिताएँ छाने लगतीं हों, अमराई की शाखाओं सी बहियाँ बौराईं लगतीं हों, नदियाँ कृशकायी लगतीं हों, समझो द्वारे पर है बसन्त।।

कह उठे गगन हा रसा! रसा! हर वसन लगे जब कसा कसा हो दिशा दिशा की एक दशा तन पर मादकता भरा नशा वाणी अवाक् रह जाती हो बिन कहे अदा कह जाती हो संकेत मुखर हो जाते हों

अरमान शिखर हो जाते हों हर ओर-छोर तक पोर-पोर बासन्ती रँग में बोर-बोर सौन्दर्यलोक की वही दृष्टि रचने को आतुर नई सृष्टि गाते हों किन्नर-किन्नरियाँ हर तरह अनूठी अलसातीं आनन्द लुटातीं इठलातीं सम्मोहित करतीं बल्लरियाँ, कल्पनातीत तरुणाई में लटका ललनाएँ झल्लरियाँ जब दबा-दबा कर ओठों से सकुचाईं सीं बौराईं सीं मदिराईं सीं भरमाईं सीं घर में आईं सीं लगती हों, गलियाँ गदराईं लगतीं हों रक्तिमाहरित कोपलें उमग विटपों पर कौतूहल करतीं कुछ मस्तातीं कुछ सुस्तातीं उल्लास जगातीं बलखातीं सकुचातीं आईं लगतीं हों, समझो द्वारे पर है बसन्त।।

गुनगुनी धूप शीतल समीर मन मुदित किन्तु आधा अधीर सुखदाई कुछ-कुछ दुखदाई पीताभ पल्लवों की लड़ियाँ धरती पर गिरतीं झूम-झूम लावण्यमयी मिष्ठास प्रबल होती हो कड़वी पर हलचल आकर्षण और विकर्षण की बेलाएँ सजतीं लगतीं हों, खारीं लहराईं लगती हों आलाप टिटहरी का सुनकर गा उठे पपीही पिया पिया बिरहिनि के मन में उठे हूक हो उठे कलेजा टूक-टूक गाती हो कोयल कूक-कूक चातक जाता हो चूक-चूक विधवा-सधवा की छिड़े जंग उड़ चले कहीं चढ़ उठे रंग चिकनी चिकनी हर देह एक बदलाव लिए जब मटक-मटक चटकीले मटके सी फूली फूलों की डाली से बोले रंगीन मिजाजी मंजरियाँ मरुथल में जैसे जल परियाँ ओढ़े बासन्ती चूनरियाँ मदमाती आती कर्तरियांँ बिन ब्याहीं युवती सुन्दरियाँ सामाजिक भय से डरीं-डरीं प्रेमी से जाकर दूर खड़ीं उन्मन अलसाईं लगतीं हों हारीं हरजाई लगतीं हों नतमुख शरमाईं लगतीं हों, समझो द्वारे पर है बसन्त।।

जब हो निरभ्र आकाश और तारों से जड़ी हुई चूनर ओढ़े बैठी हो नत रजनी टकटकी लगा कर कामदग्ध कर उठे प्रतीक्षा शशि वर की आते निहारने लगे तभी सौतिया डाह से भरी हुई चाँदनी कहे तू निकल! निकल! दोनों-दोनों को कुपित दृष्टि से घूर उठें हो विकल-विकल पसरे सन्नाटे बोल उठें लज्जा मर्यादा छोड़-छाड़ कामातुर लगने लगें जीव ऋतुपति के रंगमहल से जब टक्कर लेने की होड़ करे सूखड़ी झोपड़ी खड़ी-पड़ी डायन की सुन्दरता रति को दे उठे चुनौती बार-बार मदगन्ध सुहानी डोल उठे बहकी बयार रस घोल उठे हो उठे मधुरतम हर आलम नर बोल उठे सजनी रजनी! रजनी बोले बालम! बालम! हौले हौले शरमाती हो जब प्रीति परस्पर गाती हो उद्दाम काम उन्मत्त प्रेम दुर्दम्य ललक वासना भरी चहुंओर दिखाई देती हो मस्ती सी छाई लगती हो बस्ती बौराई लगती हो जब ग़ज़ल रुबाई लगती हो समझो द्वारे पर है बसन्त।।